''संस्कृत वाङ्मय में लोक कल्याण की व्यापक भावना''

–राम लाल विश्वकर्मा
(असि0 प्रोफेसर, संस्कृत–विभाग)
का0सु0 साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है यह चिर नूतन भाषा हैं क्योंकि सर्वप्राचीन होने पर भी आज किसी भी भाषा से अधिक युवती है। भारतवर्ष का अधिकांश साहित्य संस्कृत भाषा में ही निबद्ध है। संस्कृत वाङ्मय भारतीय संस्कृति का मूल स्रोत है। इसमें मानव कल्याण की भावना कूट–कूट कर भरी है। संस्कृत–साहित्य 'सर्वेभवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्।।[1] तथा ''वसुधैव कुटुम्बकम्''[2] का डिम–डिम घोष करते हुए समाज कल्याण की अवधारणा को स्पष्ट करता है।

संस्कृत साहित्य की यह अनोखी विशेषता है कि यह मानव मात्र के कल्याण की भावना को अग्रसर करता है। वेद का आरम्भ ही समस्त मानवों के कल्याण के सङ्कल्प के साथ होती है– **'अग्निमीळेपुरोहितम्'**[3] इसका भावार्थ यह है कि समस्त मानवों का कल्याण करने वाले अग्नि की स्तुति करता हूँ। वैदिक ऋषि विश्व समाज कल्याण के लिए सुमति और सद्भावना की प्रार्थना करता है, ''यांश्च पश्यामि यांश्च न, तेषु मा सुमतिं कृधि।''[4]

वैदिक वाङ्मय का अन्तिम चरण उपनिषद् हैं उपनिषद् के व्युत्पत्ति में सद् धातु के विशरण गति और अवसादन अर्थों से मानव कल्याण की भावना दृष्टिगोचर होती है। उपनिषद् में निहित अद्वैतवाद मानव–मानव में ही नहीं अपितु प्राणिमात्र में एक ही तत्व के दर्शन कराता है। वह किसी से घृणा नहीं करता, सबको अपने जैसा तथा अपनी आत्मा को सब प्राणियों में देखता है–

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मयेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।[5]

वैदिक प्रार्थना में समष्टि भावना का पूर्ण साम्राज्य विराजमान है। वैदिक ऋषि व्यष्टि के कल्याण के लिए जगदीश्वर से प्रार्थना नहीं करता, प्रत्युत वह समग्र समष्टि के मङ्गल के लिए आशीर्वाद चाहता है वह व्यक्ति तथा समाज के ऊपर उठकर समस्त विश्व के सुख समृद्धि तथा मङ्गल के निमित्त ही प्रार्थना करता है मन्त्रों का प्रामाण्य इस विषय में अक्षुण्ण है–

ऊँ विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव।
यद्भद्रं तन्न आ सुव।।[6]

विश्वशान्ति और विश्वबन्धुत्व की उदात्त भावना से ओत–प्रोत वैदिक मन्त्रों में मानवमात्र में परस्पर सौहार्द, मैत्री तथा सहाय की भावना की उपलब्धि नितान्त स्वाभाविक है–

मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूताणि भूतानि समीक्षे।
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।।[7]

(अर्थात् मैं मित्र की दृष्टि से सब प्राणियों को देखूँ। हम सब लोग मित्र की दृष्टि से परस्पर में एक दूसरे को देखें।)

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में विशिष्ट सूक्त हैं जिनकी संज्ञा है सांमनस्य सूक्त। इनमें विशेष रूप से विश्वकल्याण की भावना परिव्याप्त है–

''सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे सं जानाना उपासते।।[8]

इस मन्त्र का तात्पर्य बड़ा गम्भीर है। हे मनुष्यों! जैसे सनातन से विद्यमान दिव्यशक्तियों से सम्पन्न सूर्य चन्द्रादि देव परस्पर अविरोध भाव से, प्रेम से अपने कार्यों को करते हैं, ऐसे ही तुम भी समष्टि भावना से प्रेरित होकर एक साथ कार्यों में प्रवृत्त हो, ऐकमत्य से रहो और परस्पर सद्भाव से रहो।

ऋग्वेद का अन्तिम मन्त्र इसी भावना को अग्रसर करता है–

समानी व आकूतिः समाना ↓दयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[9]

मानवों को लक्ष्यकर आंगिरस संवनन ऋषि का उपदेश इस मन्त्र में निहित है। वह कहते हैं कि मानवों की आकूति (चित्तवृत्ति), ↓दय तथा मन सब समान हो, तभी विश्व के प्राणी परस्पर में सौहार्द से निवास कर सकते हैं।

ऋग्वेद का स्वस्तिवाचन जो सम्पूर्ण विश्वकल्याण की बात करता है; सबका मण्ल चाहता है– **''आ नो भद्राः कतवो यन्तु विश्वतो''**[10]

विश्व साहित्य के अक्षय भण्डार अष्टादश पुराण अद्वितीय एवं सर्वोत्कृष्ट रत्न हैं। ये हमारे सामाजिक सांस्कृतिक राजनैतिक धार्मिक और दार्शनिक जीवन को स्वच्छ दर्पण के समान प्रतिबिम्बत करते हैं। पुराणों को भारतीय संस्कृति का मेरुदण्ड कहा गया है। व्यास के अनमोल दो वचन पुराणों में निहित समाज कल्याण की अवधारणा को स्पष्ट कर देते हैं–

''अष्टादशपुराणेषु व्याससस्य वचनद्वयम्।
परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्।।[11]

श्रीमद्भागवद् महापुराण में समस्त संसार के लिए मण्ल कामना इस प्रकार की गयी है–

स्वस्त्यस्तु, विश्वस्य खलः प्रसीदतां
ध्यायन्तु भूतानि शिवं मिथो धिया।
मनश्च भद्रं भजतादधोक्षजे
आवेश्यतां नो मतिरयहैतुकी।।[12]

रामायण में जिन आदर्शों को विभिन्न पात्रों के माध्यम से उपस्थित किया गया है, वे मनुष्य मात्र के लिए उपादेय ही नहीं अवश्य अनुष्ठेय भी है। महर्षि वाल्मीकि के द्वारा अनेकशः समाज–कल्याण की बात कही गयी है–

''अपुत्राः पुत्रिणः सन्तु पुत्रिणः सन्तु पौत्रिणः।
अधनाः सधनाः सन्तु शरदां शतम्।।[13]

महाकवि कालिदास ने रघुवंशम् महाकाव्य में समाज–कल्याण पर विशेष प्रकाश डाला है। महाकवि कालिदास के वर्णन में राजाओं का जीवन परोपकार तथा समाजकल्याण की एक दीर्घ परम्परा रहा है। कालिदास ने महाराज अज के वर्णन में कहा है कि उनका धन ही केवल दूरे के उपकार के लिए नहीं था, प्रत्युत समस्त सद्गुण दूसरों का कल्याण सम्पादन करते थे, उनका बल पीड़ितों के भय तथा दुःख का निवारण करता था और उसका शास्त्राध्ययन विद्वानों के सत्कार एवं आदर में प्रयुक्त होता था–

बलमार्तभयोपशान्तये विदुषां सत्कृतये बहु श्रुतम्।
वसु तस्य विभोर्न केवलं गुणवत्तापि परप्रयोजना।।[14]

नैषधकार श्रीहर्ष के काव्य का उद्देश्य ही अपनी कविता द्वारा विश्व को एकीकृत करना है राजा नल प्रजापालक तथा सहज रूप से मानव कल्याण के प्रति संकल्पित थे–''निपीय यस्य क्षितिरक्षिणः कथाम्।''[15]

अश्वघोष द्वारा रचित बुद्धचरितम् में समाज कल्याण की अवधारणा पग–पग पर दृष्टिगोचर होती है–

लोकस्य मोक्षाय गुरौ प्रसूते शमं प्रपेदे जगदव्यवस्थम्
प्राप्येव नाथं खलु नीतिमन्तमेको न मारो मुदमाप लोके।।[16]

(अर्थात् संसार की मुक्ति के लिए गुरु के उत्पन्न हो जाने पर अव्यवस्थित या अशान्त जगत् मानों नीतिमान् स्वामी को पाकर निश्चित रूप से शान्त हो गया। केवल कामदेव को हर्ष नहीं हुआ)।

संस्कृत नाट्य साहित्य में भी समाज कल्याण की भावना पग–पग पर दृष्टिगोचर होती है। भास के नाटकों में यह भावना प्रबलयता दृष्टिगोचर होती है–

सर्वत्र सम्पदः सन्तु नश्यन्तु विपदः सदा।
राजा राजगुणोपेतो भूमिमेकः प्रशास्तु नः।।[17]

इस प्रकार समस्त संस्कृत वाङ्मय का मुख्य प्रतिपाद्य समाज कल्याण ही है। नैतिक मूल्यों की प्रतिस्थापना का श्रेय भी साहित्य को ही है।

सन्दर्भ सूची

1. पारम्परिक
2. पंचतन्त्र–38
3. ऋग्वेद 1/1/1
4. अथर्ववेद 17/17
5. ईशावाश्योपनिषद्–6
6. यजुर्वेद 30/3
7. यजुर्वेद 36/18
8. ऋग्वेद 10/191/2
9. ऋग्वेद 10/191/2
10. ऋग्वेद 1/89/1
11. महाभारत
12. श्रीमद्भागवद् 2/18/9
13. वाल्मीकि रामायण
14. रघुवंशम् 8/31
15. नैषधीय चरितम् 1/1
16. बुद्धचरितम् 1/27
17. कर्णभारम् 1/25